जनसत्ता

12 दिसंबर, 2019

पर्यावरण की खातिर

वायु प्रदूषण के मामले में दुनिया के पैमाने पर भारत की स्थिति भले अच्छी न हो, लेकिन जलवायु संकट को लेकर सजगता के मामले में भारत दुनिया के दस देशों में शुमार हो गया है। इन दिनों स्पेन की राजधानी मेड्रिड में जलवायु संकट पर चल रहे सम्मेलन 'कॉप 25' में जलवायु परिवर्तन प्रदर्शन सूचकांक (सीसीपीआइ) की जो रिपोर्ट जारी हुई है, उसमें भारत को उन पहले दस देशों में रखा गया है जो कार्बन उत्सर्जन कम करने के लिए तेजी से प्रयास कर रहे हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि जलवायु संकट पर अब तक हुए वैश्विक सम्मेलनों में भारत ने जो प्रतिबद्धता जताई है, उस पर गंभीरता से काम हो रहा है और पेरिस समझौते व क्योटो समझौते पर अमल की दिशा में तेजी से कदम बढ़ाए हैं। धरती का जलवायु संकट अकेला भारत का खड़ा किया हुआ नहीं है, यह पूरी दुनिया के देशों, खासतौर से विकसित देशों के कृत्यों और लापरवाही का नतीजा है। इसलिए भारत चाह कर भी अकेला कुछ नहीं कर सकता और न ही अपने हितों की अनदेखी कर सकता है। संतोष की बात यह है कि जलवायु संकट से निपटने के लिए वैश्विक प्रयासों में भारत की जो भागीदारी है, उसमें हम ईमानदारी से काम कर रहे हैं और दुनिया ने इस बात को माना भी है।

सीसीपीआइ तैयार करते वक्त सबसे ज्यादा जोर इस बात पर दिया जाता है कि संबंधित देश कोयले की खपत को कम करने सहित ऐसे क्या उपाय कर रहे हैं जिनसे जहरीली गैसों का उत्सर्जन न हो। भारत ने पिछले कुछ समय में इस दिशा में जो काम किया है वह उसके निर्धारित लक्ष्य से पंद्रह फीसद ज्यादा है। हालांकि वैश्विक स्तर पर देखें तो कोयले पर निर्भरता कम करने के लिए कई देशों ने गंभीरता दिखाई है। अब तक जो सत्तावन देश सबसे ज्यादा कार्बन उगल रहे थे, उनमें इकतीस देशों ने इसे कम करने के लिए दूसरे विकल्पों को तलाशना शुरू कर दिया है और ऐसे तरीके ईजाद किए हैं जिनसे कार्बन उत्सर्जन में कमी आई है। हालांकि भारत सहित दूसरे विकासशील देशों के लिए यह कोई आसान काम नहीं है। भारत के लिए यह बहुत ही मुश्किल है कि कोयले के इस्तेमाल को एकदम से बंद कर दिए जाए। भारत में न सिर्फ घरेलू स्तर पर, बल्कि उद्योगों में भी बड़े पैमाने पर कोयले का उपयोग हो रहा है। बिजली उत्पादन तो एक तरह से कोयले पर ही निर्भर है। ग्रामीण इलाकों में आज भी ईंधन रूप में कोयले और लकड़ी का इस्तेमाल हो रहा है। पर पिछले एक दशक में करोड़ों परिवारों पर गैस मुहैया करवा कर इस दिशा में बड़ा कदम उठाया है। सौर ऊर्जा के इस्तेमाल पर जोर दिया है। अगले तीन साल में चालीस फीसद बिजली नए ऊर्जा स्रोतों से बनाने का लक्ष्य रखा है।

सवाल है कि दुनिया के अमीर देश क्या कर रहे हैं जलवायु संकट से निपटने के लिए। सीसीपीआइ की रिपोर्ट बता रही है कि कार्बन उत्सर्जन में कमी के प्रयासों में अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, सऊदी अरब जैसे अमीर और ताकतवर देशों का रिकार्ड सबसे ज्यादा बदतर है। अमेरिका ने तो पेरिस समझौते से अपने को अलग ही कर लिया। जाहिर है, वह अपने हितों से कोई समझौता नहीं कर रहा। अब तक होता यही आया है कि दुनिया का पर्यावरण बिगाड़ने के लिए विकसित देश विकासशील देशों को ही निशाना बनाते आए हैं। ऐसे में भारत का रुख साफ है कि वह विकसित देशों के दबाव के आगे झुकेगा नहीं, लेकिन कार्बन उत्सर्जन में कमी के प्रयास जारी रखेगा। क्या यह अमेरिका जैसे देशों के लिए सबक नहीं है!

कसता शिकंजा

पाकिस्तान में बुधवार को आखिरकार हाफिज सईद के खिलाफ आतंकवाद के वित्त-पोषण के आरोप तय हो गए। लेकिन इससे पहले वहां की सत्ता के रुख में जिस तरह का ऊहापोह और उतार-चढ़ाव देखा गया था, उससे साफ था कि अनेक सबूत होने के बावजूद हाफिज सईद को गंभीर आरोपों के तहत कठघरे में खड़ा करने में सरकार को हिचक हो रही है। अब पाकिस्तान की आतंकवाद विरोधी अदालत में जब उसके खिलाफ आरोप तय हुए हैं तब भी संभावना यही है कि इसके पीछे वहां की सरकार की इच्छाशक्ति नहीं रही होगी, बल्कि यह अंतरराष्ट्रीय दबाव का नतीजा होगा। गौरतलब है कि पाकिस्तान के पंजाब प्रांत के उप-अभियोजनक जनरल अब्दुर्रऊफ ने आरोपियों के खिलाफ आरोप तय करने की दलील देते हुए कहा कि हाफिज सईद और तीन अन्य लोग आतंकवाद के वित्त-पोषण में शामिल हैं। पंजाब आतंकवाद विरोधी विभाग ने इससे संबंधित ठोस सबूत भी पेश किए। हालांकि बीते शनिवार को इसी अदालत में जिस तरह के हालात पैदा हुए थे, उससे यह आशंका खड़ी हो गई थी कि शायद एक बार फिर हाफिज को बख्श देने की भूमिका बनाई जा रही है, क्योंकि संबंधित अधिकारी इस हाई-प्रोफाइल मामले की सुनवाई में भी एक सह-आरोपी को पेश करने में नाकाम रहे थे।

गौरतलब है कि जब भारत की ओर से लगातार कूटनीतिक कवायदों के बाद अंतरराष्ट्रीय समुदाय ने दबाव बनाया, तब पाकिस्तान के अधिकारियों ने लश्कर-ए-तैयबा, जमात-उद-दावा और उसकी सहयोगी शाखा फलाह-ए-इंसानियत फाउंडेशन के खिलाफ जांच शुरू की थी। हालांकि इन आरोपों की लगभग पुष्टि पहले ही हो चुकी थी, लेकिन उस जांच में भी आतंकवादी कार्रवाइयों को अंजाम देने के लिए धन जुटाने के लिए इन ट्रस्टों का इस्तेमाल किए जाने के तथ्य उजागर हुए। लेकिन यह समझना मुश्किल है कि सबूतों और तथ्यों के बावजूद पाकिस्तान की ओर से हाफिज सईद और उसके संगठनों के खिलाफ कार्रवाई को लेकर इतनी शिथिलता क्यों बरती गई। अब कोई चारा नहीं होने पर तीन आतंकियों सहित हाफिज सईद पर आतंक के वित्तपोषण के आरोप तय हुए हैं। यों पाकिस्तान का अब तक का जो रुख रहा है, उसमें अब वह अंतरराष्ट्रीय समुदाय के सामने यही प्रचारित करने की कोशिश करेगा कि हाफिज सईद के खिलाफ कसा गया ताजा शिकंजा सरकार की आतंकवाद विरोधी नीतियों का हिस्सा है। लेकिन अगर पाकिस्तान आतंकवाद पर लगाम लगाने के प्रति इतना ही ईमानदार है, तो हाफिज के मसले पर इस फैसले तक पहुंचने में इतना ज्यादा वक्त क्यों लगा!

हाफिज सईद और आतंकवाद के संबंध में शायद ही कोई तथ्य छिपा रहा है। खासतौर पर मुंबई पर आतंकी हमले के मामले में ये आरोप लंबे समय से तथ्यगत रूप से सामने थे कि उस घटना सहित दूसरी आतंकी गतिविधियों में लिप्त लोगों को हाफिज सईद के संगठनों ने धन मुहैया कराए थे और मुख्य साजिशकर्ता भी वही था। लेकिन हैरानी की बात यह है कि जिस हमले में एक सौ छियासठ लोग मारे गए थे, उसके जिम्मेदार आरोपियों के खिलाफ ठोस कार्रवाई करने के प्रति पाकिस्तान ने कभी ईमानदारी से कोई ठोस पहलकदमी नहीं की। जबकि भारत की ओर से जुटाए गए सबूत इस बात की साफ गवाही थे कि वह हमला पाकिस्तान स्थित ठिकानों से संचालित किया गया था। लेकिन पाकिस्तान ने हमेशा इस बात से इनकार किया था कि उसकी सीमा में आतंकी गतिविधियों को पनाह दी जाती है। लेकिन बढ़ते अंतरराष्ट्रीय दबाव के बीच इस मुद्दे पर पाकिस्तान को रक्षात्मक होना पड़ा है। यह ध्यान रखने की जरूरत है कि न केवल भारत के हितों के मद्देनजर, बल्कि खुद पाकिस्तान को अपनी सीमा में भी शांति और सहजता के लिए आतंकवाद के खिलाफ सख्त रवैया अख्तियार करने की जरूरत है।

कल्पमेधा

जहां डींग हांकना खत्म होती है, वहीं से प्रतिष्ठा की शुरुआत होती है।

– यंग

मानसिक दबाव में जवान

अभिजीत मोहन

इसमें कोई दो राय नहीं कि जवानों के आत्महत्या करने और नौकरी छोड़ने के पीछे पारिवारिक तनाव बड़ा कारण है। लेकिन दूसरे कारण भी हैं जो जवानों को विचलित करते रहते हैं। सच तो यह है कि नौकरी की कठिन सेवा शर्तें भी जवानों की परेशानी और आत्महत्या की बड़ी वजह है। कुछ वर्षों से सेना द्वारा नौकरी की सेवा-शर्तें एवं वेतन में व्याप्त विसंगतियों को लेकर सवाल उठाया जाता रहा है। कठिन सेवा शर्तें कई किस्म की परेशानियां खड़ी कर रही हैं।

कुछ दिन पहले नक्सल प्रभावित राज्य छत्तीसगढ़ के नारायणपुर जिले में भारत तिब्बत सीमा पुलिस (आइटीबीपी) के एक जवान ने अपने ही छह साथी जवानों की गोली मार कर हत्या कर दी थी। दो दिन पहले झारखंड में केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल (सीआरपीएफ) के जवानों में संघर्ष के दौरान गोलियां चलीं, जिसमें दो जवान मारे गए। ये घटनाएं विचलित करने वाली हैं। इन घटनाओं के कारण जो भी रहे हों, लेकिन इतना तय है कि हमारे अर्धसैनिक बलों की हालत अच्छी नहीं है। ये घटनाएं बता रही हैं कि सुरक्षा बलों के ज्यादातर जवान बुरी तरह अवसादग्रस्त और मानसिक दबाव में हैं, इसलिए इनके भीतर कहीं न कहीं गहरा असंतोष पनप रहा है। इसके कारण चाहे पारिवारिक हों अथवा विभागीय, लेकिन गौर करें तो साथी जवानों पर हमले और हत्याओं की घटनाएं नई बात नहीं हैं। कुछ साल पहले औरंगाबाद में केंद्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल (सीआइएसएफ) के एक जवान ने अपने ही चार साथियों को गोलियों से उड़ा दिया था। इसी तरह झारखंड के सरायकेला में एक जवान ने अपने असिस्टेंट कमांडेट सहित छह जवानों को मार डाला था। हत्यारोपी जवान अवसाद से पीड़ित था।

आमतौर पर आत्महत्या की प्रवृत्ति उन जवानों में सर्वाधिक देखी जाती है जो सीमा पर पहरा देते हैं या जोखिम भरे क्षेत्रों में काम करते हैं। अक्सर इन कार्यों में जवानों को अपनी जान भी गंवानी पड़ती है। आंकड़ों पर गौर करें तो भारत-पाक सीमा पर गोलीबारी, आतंकवादी और उग्रवादी गतिविधियों के कारण पिछले तीन वर्षों में सुरक्षा बलों के तकरीबन चार सौ से अधिक जवानों ने जान गंवाई है। इनमें सबसे अधिक जवान सीमा सुरक्षा बल (बीएसएफ) के शहीद हुए हैं। इस बल ने 2015 से 2017 के दरम्यान एक सौ सड़सठ जवानों को खोया है। अपने साथी जवानों की शहादत को देख कर अन्य जवानों का विचलित होना स्वाभाविक है। मनोवैज्ञानिकों की मानें तो इनमें से कुछ जवान अवसाद में चले जाते हैं। गृह मंत्रालय ने एक रिपोर्ट में जवानों की आत्महत्या और अवसाद के कई कारण गिनाए थे, जिसकी वजह से पिछले कुछ वर्षों में विभिन्न अर्ध सैनिक बलों के चार सौ से अधिक जवानों ने आत्महत्या की और साथ ही अपने साढ़े तीन दर्जन से अधिक साथियों को निशाना बनाया। ध्यान दें तो आत्महत्या और साथियों को निशाना बनाने के अलावा बड़ी संख्या जवान नौकरी भी छोड़ रहे हैं। इसका मतलब साफ है कि जवान अपनी नौकरी की सेवा शर्तों को लेकर बहुत संतुष्ट नहीं हैं।

आमतौर पर अर्धसैनिक बलों के उच्चाधिकारी यह दलील देते हैं कि जवानों में आत्महत्या की बढ़ती प्रवृत्ति का मूल कारण उनका पारिवारिक तनाव है, न कि नौकरी के दौरान उपजने वाला मानसिक दबाव। इसमें कोई दो राय नहीं कि जवानों के आत्महत्या करने और नौकरी छोड़ने के पीछे पारिवारिक तनाव बड़ा कारण है। लेकिन दूसरे कारण भी हैं जो जवानों को विचलित करते रहते हैं। सच तो यह है कि नौकरी की कठिन सेवा शर्तें भी जवानों की परेशानी और आत्महत्या की बड़ी वजह है। कुछ वर्षों से सेना द्वारा नौकरी की सेवा-शर्तें एवं वेतन में व्याप्त विसंगतियों को लेकर सवाल उठाया जाता रहा है। कठिन सेवा शर्तें कई किस्म की परेशानियां खड़ी कर रही हैं।

केवल सीआरपीएफ की ही बात करें तो अस्सी प्रतिशत जवानों को पिछले दो दशक से एक जगह पर स्थायी रूप से नियुक्ति नहीं मिल पाई है और वे समय-समय पर मिलने वाली प्रोन्नति से भी वंचित हैं। सच कहें तो उनका जीवन खानाबदोशों की तरह हो गया है। सरकार को समझना होगा कि वे भी समाज का हिस्सा हैं और उन्हें भी मानवीय संवेदनाएं प्रभावित करती हैं। उनके मन में भी अपने परिवार के साथ रहने की इच्छा होती है। माना कि उनके कंधे पर देश की सुरक्षा की जिम्मेदारी है और उन्हें अपने कार्यों को अंजाम देना चाहिए। यह भी सही है कि उन्हें उपद्रवग्रस्त क्षेत्रों से लेकर दुर्गम क्षेत्रों में भेजा जाना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। लेकिन सरकार और सेना के उच्च अधिकारियों की भी जिम्मेदारी बनती है कि वे जवानों की भावनाओं का ख्याल रखें और उन्हें उचित पोषण के अलावा जरूरत पड़ने पर छुट्टियां दें, ताकि वे सामाजिक समारोहों में शामिल हो सकें। अगर उन्हें समय-समय पर छुट्टियां मिलती रहें तो वे अवसाद में जाने से बचेंगे। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात ये है कि जवानों को आधुनिक संसाधनों से लैस किया जाना बेहद आवश्यक है, क्योंकि उन्हें लंबी दूरी तक पैदल चलना, प्रतिकूल जमीनी हालात से समझौता करना, बेहद नमी और गर्म जलवायु में सामंजस्य स्थापित करना होता है। उन्हें विषम परिस्थितियों में भोजन और पानी के बिना भी कई-कई दिनों तक रहना पड़ता है। घने जंगल और पथरीले रास्तों के बीच जानलेवा मच्छरों और अन्य कीटों की मौजूदगी उनकी जान पर बन आती है।

हालांकि सरकार ने पिछले कुछ समय में जवानों की इन समस्याओं पर गौर किया है और कुछ कदम उठाए भी हैं। जैसे जवानों में व्याप्त मानसिक तनाव दूर करने के लिए 'सहयोग और मिलाप' जैसे कार्यक्रम शुरू किए गए हैं। इसके सार्थक परिणाम देखने को मिल रहे हैं। इस पहल से जवानों में आत्महत्या करने और सहकर्मियों को निशाना बनाने की प्रवृत्ति में कमी आने के संकेत मिल रहे हैं। सरकारी आंकड़ें बताते हैं कि 2016 में सेना में आत्महत्या के संदिग्ध मामलों की संख्या एक सौ चार थी, जो 2017 में घट कर पचहत्तर और 2018 में अस्सी तक आ गई थी। इसी अवधि में सेना में भी सहकर्मियों की हत्या के मामलों में भी काफी कमी आई है। आंकड़ों पर गौर करें तो इस अवधि में यह संख्या क्रमशः दो, एक और एक थी। इसी तरह 2016 में नौसेना में आत्महत्या के संदिग्ध मामलों की संख्या छह थी, जो 2017 में पांच और 2018 में आठ दर्ज की गई। अच्छी बात यह रही कि इस अवधि में नौसेना में सहकर्मियों की हत्या का कोई मामला सामने नहीं आया। वायुसेना की बात करें तो 2016 में आत्महत्या के संदिग्ध मामलों की संख्या उन्नीस थी, जो 2017 में इक्कीस और 2018 में सौलह दर्ज की गई। 2016 में वायुसेना में सहकर्मियों की हत्या का केवल एक मामला सामने आया, जबकि 2017 और 2018 में ऐसा एक भी मामला देखने को नहीं मिला। अब जब सरकार जवानों में हत्या-आत्महत्या जैसी प्रवृत्ति को रोकने के लिए उन्हें मनोवैज्ञानिक सलाहकारों की मदद दे रही है तो निःसंदेह उनके स्वभाव में बदलाव आएगा। अकसर देखा-सुना जाता था कि जवान कपड़े और भोजन को लेकर नाराजगी जताते थे। लेकिन अब अच्छी बात यह है जवानों को पहले के बजाए अब बेहतर कपड़े, गुणवत्तापरक भोजन, विवाहितों के लिए आवास और यात्रा जैसी कई सुविधाएं दी जा रही हैं, ताकि उनमें किसी तरह का अवसाद न पनपे।

अर्धसानिक बलों के जवान उचित खानपान न मिलने, छुट्टियां न मिलने जैसी शिकायतें सोशल मीडिया पर भी करते रहे हैं। जवानों की इस प्रवृत्ति देश व समाज में गलत संदेश जा रहा था। गौर करें तो अभी गत वर्ष पहले देखने-सुनने को मिला था कि सीमा सुरक्षा बल के एक जवान ने खराब खाने को लेकर अपना वीडियो जारी किया, वहीं सीआरपीएफ का एक जवान एक वीडियो में अद्धसैनिक बल के जवानों को सेना के बराबर वेतन और अन्य सुविधाओं देने की मांग कर रहा था। हालांकि अब सरकार ने देर से ही सही, पर जवानों की सुध ली है और कुछ इस तरह का वातारवरण निर्मित कर रही है जिससे कि जवान आत्महत्या जैसे कदम न उठाएं और न ही अवसादग्रस्त होकर अन्य साथियों को निशाना बनाएं।

नेकी का चेहरा

सुरेशचंद्र रोहरा

दुनिया मेरे आगे

हमारे शहर में एक 'नेकी की दीवार' है, जहां शहर के लोग अपने पुराने कपड़े, जूते, चप्पलें सहित ऐसी शय जो काम की नहीं रही, आकर छोड़ जाते हैं। नेकी की दीवार पर अपनी बेकाम हो चुकी चीजों को छोड़ कर हमें शांति की अनुभूति होती है। एक दफा घर पर मैंने भी शायद कुछ नेकी का काम किया था। मेरे और मेरी पत्नी के कुछ पुराने कपड़े, बच्चों की पुरानी उपयोग में नहीं आ रही चीजों को फेंकने की जगह कुछ लोगों को मैं बुला लाया और उन्हें अपनी पसंद की काम की चीजों को ले जाने का अनुरोध किया। पांच-छह पुरुष, महिलाओं ने सारी चीजें आपस में बांट ली। मुझे सुखद अनुभूति के साथ यह भी प्रतीत हुआ कि कहीं मुझसे कुछ गलत काम तो नहीं हो गया है!

क्या यह नेकी का काम है? शायद नहीं! मैंने अपनी बेकार की चीजों को अगर किसी को बांट दिया, तो यह नेकी का काम किस अर्थ में यह हुआ? यह तो आत्म-छलना, प्रवंचना से आगे कुछ भी नहीं है। मैं सोचता रहा। उद्विग्न होकर विचार करता रहा कि कहीं कुछ गलत हो रहा है। किसी ने कहा कि आपने बड़ा ही नेक काम किया, जरूरतमंदों को अपनी चीजें बांट दी। मगर मेरा जमीर यह स्वीकार करने तैयार नहीं हुआ कि इसमें मेरी कुछ नेकी का काम है।

ऐसी ही संकल्पना 'नेकी की दीवार' की अनुभूत होती है। राजधानी रायपुर सहित हमारे छत्तीसगढ़ के अनेक शहरों में 'नेकी की दीव ार' बना दी गई है, जहां लोग अपनी पुरानी चीजें छोड़ कर खुशी महसूस करते हैं। कई जगहों पर काफी राशि खर्च कर बनाई गई ऐसी 'नेकी की दीवारों' की भव्यता देख कर आंखें चौंधिया जाती हैं। एक जगह तो पचास लाख का भवन है, तो तीस लाख की सजावट की गई है। अब यह 'नेकी की दीवार' है, जहां लोग आते हैं, अपने बेकार हो चुके सामान दे जाते हैं, जिन्हें नगर निगम बाद में जरूरतमंद लोगों या परिवारों के पास पहुंच कर छोड़ जाता है।

दरअसल, यह नेकी की दीवार की संकल्पना का भदेस स्वरूप है। हम हर अच्छी प्रेरणादायी घटना को बिगाड़ कर, उसकी बुनियादी सोच के साथ एक तरह से उसकी भावना की हत्या कर देते हैं। 'नेकी की दीवार' की भावना बेशक बेहद उदात्त है। एक श्रेष्ठ सोच और भावना का प्रतिफल है। मगर हम इसमें जब सरकार, नगर निगम, स्वयंसेवी संस्थाओं को जोड़ देते हैं तो यह अपनी मूल सोच को खो देता है। 'नेकी की दीवार' आम आदमी की पहल का नतीजा है। यह आम आदमी द्वारा क्रियान्वित हो तो बेहतर प्रतिसाद, उच्च भावना का प्रदर्शन माना जा सकता है। मगर सरकार, नगरीय निकाय इस काम को करने लगे तो यह अपना मूल स्वभाव छोड़ देता है। यह अनुभूति मुझे 'नेकी की दीवार' के आसपास कुछ समय व्यतीत करने के बाद शिद्दत से हुई।

मुझे लगा कि पचास लाख या एक करोड़ रुपए खर्च कर-के जब सरकार 'नेकी की दीवार' का संचालन करने लगे तो यह 'नेकी की दीवार' कहां रही! करोड़ों के खर्च की शोभा के साथ पुराने कपड़े या जरूरत के सामान बांटना। उसका तो मूल स्वभाव ही बदल गया! नेकी की दीवार का मूल है उत्स है सादगी और मनुष्य का श्रेष्ठतम भाव। अगर करोड़ों खर्च करके किए गए आयोजन के तहत पुराने और छोड़े गए कपड़े या सामान बांटे जाते हैं तो उसका कोई मतलब नहीं रहा। भले ही कल्याण कार्य या उदात्तता का प्रदर्शन हो जाए।

बचपन में सुना था पिता से कि 'नेकी कर दरिया में डाल'। इसमें 'नेकी कर'' तो समझ में आ गई, मगर 'दरिया में डाल', मेरी बाल सुलभ बुद्धि अनुभूत नहीं कर सकी थी। लंबे समय तक यह कहावत मेरे मन-मस्तिष्क में उमड़ती-घुमड़ती रही और आखिरकार अब समझ में आया। लेकिन लगता है कि आज भी बहुतों को यह कहावत समझ में नहीं आई है और वे आत्मप्रवंचना में उलझे हुए हैं। भारी राशि खर्च कर किए गए इस आयोजन के पैसों से नए कपड़े खरीदे और बांटे जा सकते थे। लेकिन किसी दिखावे के आयोजन से लोगों का भला चाहे जिस सीमा में हो, लेकिन सच यह है कि बिचौलिए अफसर और नेताओं को मलाई खाने को मिल जाती है। आखिर क्या वजह है कि भव्यता और शान के बीच खड़ी 'नेकी की दीवार' के पास जाने वाले गरीब लोग हिचकने लगते हैं, वहां रखी गई चीजें लेने में हीनभाव महसूस करने लगते हैं। जरूरत इस बात की है कि 'नेकी की दीवार' के आयोजन को उसकी मूल संकल्पना के साथ उतारा जाए! लोग मदद करना चाहते हैं तो उस मदद में एक गरिमा हो, उसके प्रति सम्मान हो, जिसकी मदद की जा रही है। जिन सामानों का उपयोग हमारे पास नहीं है, वे किसी और के उपयोग में आएं, तो अच्छा है। लेकिन अगर हम उस मदद में गरिमा को साथ में रखें तो 'नेकी की दीवार' अपनी वास्तविक भावना के साथ जमीन पर उतर सकेगी।

महंगी शिक्षा

अगर हम औपचारिक शिक्षा के इतिहास में जाएं तो सर्वप्रथम चार्टर एक्ट, 1813 में ब्रिटिश सरकार ने भारत के शिक्षा के लिए एक लाख रुपए का अनुदान देने की घोषणा की। लेकिन इस एक लाख रुपए को किस प्रकार से खर्च करना है, यह विचार करते हुए 1835 में लार्ड मैकाले ने छनन सिद्धांत के तहत शिक्षा देने का सुझाव दिया, जिसमें शिक्षा अभिजात्य लोगों को दिया जाना तय हुआ। फिर बाद में यह फैसला लिया गया कि शिक्षा आम जन तक सीधी पहुंचे, इसलिए 1854 में वुड डिस्पैच आयोग बनाया गया, जिसे शिक्षा के इतिहास में मैग्नाकार्टा कहा जाता है।

भारत की आजादी के बाद बहुत सारे आयोग बने, जिसमें जन शिक्षा को नया रूप देने के साथ ही साथ निजीकरण के दरवाजे को भी खोल दिया गया, जिसमें शिक्षा को बेचा और खरीदा जाने लगा। लेकिन अगर हम गांधीजी की शिक्षा संकल्पना की बात करें तो उसमें हमेशा अंत्योदय यानी समाज में अंतिम पायदान पर जीवन यापन करने वाला व्यक्ति तक शिक्षा की पहुंच होनी चाहिए, जिससे उसका सर्वांगीण विकास हो सके। 1964 में कोठारी आयोग और 1986 में नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने अपनी संस्तुति में कहा कि शिक्षा का बजट जीडीपी (सकल घरेलू उत्पाद) का कम से कम छह प्रतिशत करने की सिफारिश की, लेकिन सरकारें कभी भी इसको चार प्रतिशत से आगे खर्च नहीं कर पाईं।

हमेशा शिक्षा को हाशिये पर रखा गया है। अगर आज के संदर्भ में भी देखा जाए तो नई शिक्षा नीति में समग्र शिक्षा की बात कही गई है, क्योंकि विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले छात्र-छात्राओं को संस्थाओं की फीस के अलावा छात्रावास, मेस की फीस और पठन-पाठन संबंधित खर्चों का निर्वहन करना पड़ता है। इसलिए किसी भी विश्वविद्यालय का फीस वृद्धि न्यायोचित नहीं है। इससे समाज में रहने वाले गरीब लोग शिक्षा से वंचित रह जाएंगे, सामाजिक विविधता भी खत्म हो जाएगी। शिक्षा सिर्फ आभिजात्य वर्ग के लिए ही होगी तो शायद हम वही मैकाले के शिक्षा संकल्पना के छनन सिद्धांत में वापस लौट जाएंगे। इसलिए हमें सभी वर्गों को ध्यान में रखते हुए उचित कदम उठाना चाहिए। हमारा संविधान भी शिक्षा के लिए अवसरों की समानता की बात करता है।

● *शैलेश मिश्र, बीएचयू, वाराणसी*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

कब जागेंगे

संपादकीय 'लापरवाही की लपटें' (9 दिसंबर) पढ़ा। दिल्ली में एक चार मंजिला अवैध फैक्ट्री में भीषण आग लगने की दर्दनाक घटना में लगभग तैंतालीस लोगों की मौत और कइयों के झुलसने के समाचार ने हर किसी को दुखी कर दिया है। साथ ही यह सोचने पर मजबूर कर दिया है कि बार-बार इस तरह के हादसों के बाद भी सतर्कता क्यों नहीं बरती जाती! करोलबाग में उपहार सिनेमा और सूरत के एक कोचिंग संस्थान की आग अभी आंखों के सामने है। मुआवजा इस दर्दनाक घटना पर मरहम लगाने का विकल्प नहीं हो सकता, पर लापरवाही पर पर्दा डालने का तरीका जरूर हो सकता है। अब इस हादसे पर प्रशासन डंडा पीटेगा, घटना के बाद सतर्कता बरतने और बचाव की बातें की जाएंगी, लेकिन जैसे ही घटना की तपिश कम होती है, आम लोगों की जिंदगी को फिर उसी मोड़ पर कराहने के लिए छोड़ दिया जाता है। कोई भी कार्रवाई और कितना भी मुआवजा किसी मारे गए व्यक्ति के परिवार को हुई क्षति की भरपाई नहीं कर सकता। हम कब जागेंगे?

● *साजिद अली, चंदन नगर, इंदौर*

संवेदनहीनता की इंतहा

आज के भारत की राजनीतिक जमात प्राचीन समय में फ्रांस में उस दौर की याद दिला रही है, जब वहां पड़ी भयंकर अकाल जनता भूखों तिल-तिल कर मरने लगी, तब वहां की जनता के कुछ प्रतिनिधि उस समय की फ्रांस की तत्कालीन महारानी से इस दुखद और कारुणिक स्थिति के बारे में बताने गए। जब वे लोग महारानी के राजदरबार में पहुंचे, तब एक व्यक्ति डरते-डरते महारानी से अपने कांपते होठों से बोला कि 'महारानी साहिबा ! बाहर भयंकर अकाल पड़ा हुआ है, लोग रोटी न मिलने से तिल-तिल कर मर रहे हैं।'

विलासिता और ऐशो-आराम में जिंदगी जीने वाली फ्रांस की महारानी चहक कर बोली- 'लोग रोटी के लिए क्यों मर रहे हैं? वे ब्रेक 'केक'क्यों नहीं खाते! ह्य आज 2019 में भारत में सत्ता के कर्णधारों की मानसिक स्थिति क्या प्राचीनकाल के उस फ्रांस की महारानी जैसी नहीं हो गई है? देश की वित्त मंत्री कितनी आसानी से यह कह देती हैं- 'मैं इतना लहसन-प्याज नहीं खाती हूं। इसलिए घबराएं नहीं! मैं ऐसे परिवार से आई हूं, जहां प्याज का मतलब ही नहीं रखते हैं।' अब प्रश्न यह है कि भारत की वित्त मंत्री क्या देश की जनता की समस्याओं को केवल अपने और अपने परिवार तक सीमित रखती हैं तो क्या उन्हें ऐसे बयान देना चाहिए था?

● *निर्मल कुमार शर्मा, गाजियाबाद*

कसौटी पर एकता

नागरिकता संशोधन विधेयक जब संसद से पास होकर पूरी तरह कानून बन जाएगा, तब क्या भारत की अनेकता में एकता पर सवाल नहीं उठेगा? इस सवाल का जवाब ढूंढ़ना ज्यादा मुश्किल नहीं है। बस जिन लोगों पर इसका असर पड़ेगा, उनकी जगह पर खुद को रख कर देखना होगा और जवाब मिल जाएगा। जो हो, इस बिल के पारित होने के बाद जब यह कानून का रूप ले लेगा, तब भारत में जो परिवर्तन होगा, उसे तो हम समझ जाएंगे, लेकिन भारत के बाहर यानी बांग्लादेश और पाकिस्तान में जो हिंदू हैं, उन पर इसका क्या असर होगा, इसे भी समझना जरूरी होगा। इस बिल को अपनाने के साथ कहीं हम जिन्ना की 'टू नेशन थ्योरी' यानी 'द्विराष्ट्र सिद्धांत' को तो नहीं अपना रहे?

इस पर विचार करना जरूरी है, क्योंकि इसका परिणाम अंत में आम आदमी को ही भुगतना है। इस बिल के पास होने के बाद भविष्य में एक बहुत बड़ी आबादी की अदला-बदली की नौबत आ सकती है। किसे कहां भेजा जा सकेगा या कहां किस रूप में रखा जाएगा, ये सवाल जटिल हालात पैदा करेंगे। उम्मीद है कि यह समूचा प्रकरण देश में किसी वैसे अदृश्य विभाजन की शक्ल न ले, जिसके बाद देश की एकता और अखंडता पर कोई आंच आए।

● *भूपेंद्र सिंह रंगा, पानीपत, हरियाणा*

www.readwhere.com